ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, July-December 2025, Submitted in December 2025

शिवप्रसाद सिंह की कथा-दुनिया को आकार देने में भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की भूमिका

संजय कुमार(शोधकर्ता), हिंदी विभाग, एनआईआईएलएम विश्वविद्यालय, कैथल (हरियाणा)
डॉ आरती, अनुसंधान पर्यवेक्षक, हिंदी विभाग, एनआईआईएलएम विश्वविद्यालय, कैथल (हरियाणा)

सार

बनारस में जन्मे उपन्यासकार शिवप्रसाद सिंह (1928–1998), जो 'रुद्र काशिकेय' उपनाम से लिखते थे, ने अपना प्रमुख कथा-साहित्य — जैसे 'काशी त्रयी' (वैश्वानर, नीला चाँद और गली आगे मुड़ती है) और आंचलिक उपन्यास (जैसे 'अलग-अलग वैतरणी') — शास्त्रीय और मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतिक दर्शन में रची-बसी अपनी बौद्धिक समझ के आधार पर रचा। यह शोध-पत्र उस बौद्धिक समझ की जड़ें सिंह की उस M.A. स्कॉलरशिप में खोजता है जो मध्यकालीन अवहट्ट रचना 'कीर्तिलता' पर आधारित थी (जिसकी राहुल सांकृत्यायन ने प्रशंसा की थी) और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मार्गदर्शन में उनके आलोचनात्मक प्रशिक्षण में भी, जिनकी नाथ योग परंपरा, कबीर और हिंदू भक्ति-भाव में मौजूद बौद्ध-तांत्रिक तत्वों पर शोध ने भारतीय धार्मिक संस्कृति को एक जीवंत और कई परतों वाली निरंतरता के रूप में समझने का एक मिला-जुला तरीका विकसित किया था। इसी आधार पर, यह शोध-पत्र तर्क देता है कि भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की मुख्य अवधारणाएँ — धर्म, कर्म, संसार-मोक्ष का संबंध, माया और अद्वैतवाद, चार पुरुषार्थ, और विशेष रूप से काशी-केंद्रित 'तीर्थ' की अवधारणा — सिंह के कथा-साहित्य में केवल सजावटी संदर्भों के रूप में नहीं, बल्कि कथानक, चरित्र-चित्रण और प्रतीकात्मक भूगोल को व्यवस्थित करने वाले संरचनात्मक तत्वों के रूप में काम करती हैं; यह बात 'काशी त्रयी' में नदियों, घाटों और 'नीला चाँद' के मध्यकालीन-आधुनिक परिवेश के चित्रण में सबसे स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अंत में, यह शोध-पत्र हिंदी साहित्य के इतिहास में सिंह की उपलब्धियों को रेखांकित करता है और मूल पाठ पर आधारित आगे के शोध के लिए दिशा-निर्देश सुझाता है।

विशेष शब्द: शिवप्रसाद सिंह; रुद्र काशिकेय; हजारी प्रसाद द्विवेदी; भारतीय सांस्कृतिक दर्शन; धर्म; कर्म; मोक्ष; तीर्थ; अद्वैत; काशी त्रयी; आंचलिक कथा-साहित्य; हिंदी उपन्यास।

1. परिचय

शिवप्रसाद सिंह (1928–1998) — बनारस में जन्मे उपन्यासकार, कहानीकार और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के लंबे समय तक प्रोफेसर रहे, जिन्होंने 'रुद्र काशिकेय' उपनाम से लेखन किया — के बारे में किसी भी गंभीर चर्चा में इस बात को ध्यान में रखना होगा कि उनका साहित्य ऐसे दिमाग की उपज था जो लगभग पूरी तरह से शास्त्रीय और मध्ययुगीन भारतीय सांस्कृतिक दर्शन के संस्थानों और श्रेणियों के बीच विकसित हुआ था। वे ऐसे उपन्यासकार नहीं थे जिन्होंने धर्म, कर्म या मोक्ष को ऐतिहासिक उपन्यास के लिए शोध की जाने वाली किसी अनोखी चीज़ के तौर पर देखा हो; ये उनकी अपनी बौद्धिक ट्रेनिंग, उनके डॉक्टरेट के माहौल और उस शहर में उनके रोज़मर्रा के जीवन का हिस्सा थे जो घाट-घाट पर इन्हीं विचारों के इर्द-गिर्द बसा था। यह लेख तर्क देता है कि भारतीय सांस्कृतिक दर्शन ने सिंह को केवल विषय या परिवेश ही नहीं दिया, बल्कि उनके काल्पनिक संसार की संरचना को भी सक्रिय रूप से आकार दिया: जैसे उनकी कहानियों के कथानक सुलझते हैं या नहीं सुलझते, उनके पात्रों को कैसे परखा और माफ़ किया जाता है, उनके द्वारा चित्रित भूगोल का क्या प्रतीकात्मक महत्व है, और उनके उपन्यासों में समय और आत्म-बोध का क्या स्वरूप उभरता है।

यह तर्क उस तथ्य को गंभीरता से लेते हुए आगे बढ़ता है जिसका ज़िक्र सिंह की जीवनी में अक्सर बस चलते-फिरते किया जाता है: कि उनके शुरुआती अकादमिक काम — मध्ययुगीन कवि-विद्वान विद्यापति की 'कीर्तिलता' और उसमें इस्तेमाल हुई अवहट्ट भाषा पर एम.ए. का शोध-प्रबंध — की तारीफ़ उस समय के शुरुआती और मध्ययुगीन भारतीय साहित्यिक संस्कृति के दो सबसे बड़े विद्वानों, राहुल सांकृत्यायन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने की थी; और बाद में सिंह, नामवर सिंह और विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ, उन हिंदी आलोचकों और उपन्यासकारों के समूह का हिस्सा बने जिन्हें सीधे द्विवेदी ने तैयार किया था। द्विवेदी केवल हिंदी साहित्य के इतिहासकार नहीं थे; वे मध्ययुगीन भारत की मिली-जुली धार्मिक संस्कृति की व्याख्या करने वाले प्रमुख आधुनिक विद्वानों में से एक थे। उन्होंने नाथ योग परंपरा, कबीर, स्थानीय भक्ति-परंपरा में बौद्ध और तांत्रिक तत्वों के अवशेषों, और संस्कृत के उच्च दर्शन तथा आम लोगों के लोक-धार्मिक जीवन के बीच लंबे और अटूट संबंध पर गहन शोध-कार्य प्रकाशित किए। इस विचारधारा में प्रशिक्षित उपन्यासकार को भारतीय दर्शन का केवल सजावटी ज्ञान नहीं मिला, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक सामग्री को

मृत विचारों के संग्रहालय के बजाय एक जीवित और सक्रिय प्रणाली के रूप में पढ़ने का कार्य-तरीका मिला।यह लेख ग्यारह हिस्सों में व्यवस्थित है। इसकी शुरुआत सिंह के बौद्धिक विकास को करीब से समझने से होती है, जिसके बाद भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की मुख्य श्रेणियों — धर्म, कर्म, संसार-मोक्ष का संबंध, माया, पुरुषार्थ या जीवन के चार लक्ष्य, तीन गुणों का सिद्धांत, अद्वैतवाद और विशेष रूप से काशी-केंद्रित 'तीर्थ' की अवधारणा — को समझा जाता है। इसके बाद, इन श्रेणियों को सिंह की आंचलिक कहानियों और उनकी काशी-त्रयी (वैश्वानर, नीला चाँद और गली आगे मुड़ती है) पर लागू किया जाता है। साथ ही, बौद्ध, नाथ और लोक-धार्मिक सामग्री को सिंह द्वारा प्रस्तुत करने के तरीके में द्विवेदी की मिली-जुली विद्वता की खास विरासत पर भी विचार किया जाता है। अंत में, इसकी आलोचनात्मक प्रतिक्रिया और कुछ निष्कर्षों पर चर्चा की जाती है।

2. बौद्धिक विकास: शिष्य-परंपरा, मध्यकालीन विद्वता और सांस्कृतिक कल्पना का निर्माण

हिंदी भाषा में उपलब्ध जीवन-वृत्तांतों के अनुसार, सिंह का औपचारिक अकादमिक करियर 'कीर्तिलता' पर स्वर्ण पदक जीतने वाले एम.ए. शोध-प्रबंध से शुरू हुआ। 'कीर्तिलता' पंद्रहवीं सदी की मैथिली-अवहट्ट कविता है जिसे विद्यापति की रचना माना जाता है; यह पाठ स्वयं संस्कृत के उच्च साहित्य और आम बोलचाल की क्षेत्रीय भक्ति-अभिव्यक्ति के बीच भाषाई और सांस्कृतिक संगम पर स्थित है। मध्यकाल के इस संक्रमणकालीन पाठ के साथ शुरुआती और गहन भाषाई-साहित्यिक जुड़ाव को राहुल सांकृत्यायन (जो स्वयं एक बौद्ध भिक्षु-विद्वान, इतिहासकार और बीसवीं सदी के भारतीय बौद्धिक जीवन के महान बहुज्ञ थे) और हजारी प्रसाद द्विवेदी से प्रशंसा मिली—यह कोई मामूली या संयोगवश हुई घटना नहीं थी; बल्कि यह साबित करता है कि विद्वता की दुनिया में सिंह का प्रवेश ही भारतीय सांस्कृतिक सामग्री को उन बिंदुओं पर पढ़ने का प्रयास था जहाँ संस्कृत, प्राकृत-अपभ्रंश और क्षेत्रीय परंपराएँ मिलती और घुलती-मिलती हैं।

द्विवेदी का अपना विद्वतापूर्ण काम—जिसने सिंह, नामवर सिंह और विश्वनाथ त्रिपाठी सहित बनारस में प्रशिक्षित हिंदी आलोचकों की एक पूरी पीढ़ी को आकार दिया—मुख्य रूप से ऐतिहासिक बदलावों के बावजूद भारत की धार्मिक-दार्शनिक संस्कृति की निरंतरता को दिखाने पर केंद्रित था। उनके शोध में नाथ योग संप्रदाय, कवि-संत कबीर और बाद की हिंदू क्षेत्रीय भक्ति-धारा में बौद्ध और तांत्रिक विचारों की मौजूदगी जैसे विषयों को शामिल किया गया था। उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक दर्शन को अलग-अलग और एक-दूसरे से कटे हुए तंत्रों के क्रम के रूप में नहीं, बल्कि एक एकल, ऐतिहासिक परतों वाले निरंतर प्रवाह के रूप में देखा, जिसमें नई परतों के नीचे पुरानी परतें भी सक्रिय रहती हैं। इस प्रभाव में तैयार हुआ कोई उपन्यासकार काशी जैसे शहर के बारे में लिखते समय इसी तरह की परतों को खोजने के खास नज़रिए से काम करेगा—यानी किसी गली, किसी रस्म या किसी खास मुहावरे को किसी एक शुद्ध परंपरा का हिस्सा मानने के बजाय, उसमें एक साथ वैदिक, बौद्ध, तांत्रिक, नाथ और भक्ति-विरासत की परतें होने की संभावना को देखेगा।यह बौद्धिक विकास 'नीला चाँद' के पाठकों द्वारा पहले से ही नोट की गई एक शैलीगत विशेषता को समझने में भी मदद करता है: आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में संस्कृत, बौद्ध और पाली स्रोतों से लिए गए पुराने शब्दों का जान-बूझकर इस्तेमाल। ऐसी तकनीक केवल पुरानी चीज़ों की सजावट नहीं है; यह द्विवेदी के अपने विद्वतापूर्ण तरीक़े का ही एक तरह से उपन्यास वाला रूप है; एक ऐसा तरीक़ा जिससे भारतीय धार्मिक-भाषाई संस्कृति की ऐतिहासिक परतें खुद गद्य की बुनावट में सुनाई देने लगती हैं। जहाँ बिना इस ट्रेनिंग वाला कोई उपन्यासकार मध्यकालीन अतीत को आधुनिक किरदारों द्वारा पहने जाने वाले किसी लिबास की तरह पेश कर सकता था, वहीं सिंह की ट्रेनिंग ने उन्हें अतीत को एक ऐसी भाषाई और दार्शनिक बुनियाद के तौर पर देखने में सक्षम बनाया जो आज के उस शहर में भी आंशिक रूप से जीवित है जिसका वर्णन उनके दूसरे उपन्यासों में मिलता है।

यह भी ध्यान देने वाली बात है कि सिंह का कथा-साहित्य काशी से आगे बढ़कर उत्तरी भारत के ग्रामीण इलाकों तक भी फैला है, जैसा कि उनके 'आंचलिक' उपन्यासों (जैसे 'अलग-अलग वैतरणी') में दिखता है। यह भौगोलिक दायरा ठीक उसी लोक-और-शास्त्रीय निरंतरता को दर्शाता है जिस पर द्विवेदी की विद्वता ने ज़ोर दिया था: इस नज़रिए से, भारतीय सांस्कृतिक दर्शन केवल संस्कृत-आधारित शहरी ज्ञान-केंद्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह बदले हुए रूप में गाँवों की रीति-रिवाजों, मौखिक परंपराओं और आम खेती-किसानी वाले जीवन की व्यावहारिक नैतिकता में भी जीवित है। इस नज़रिए से देखें तो सिंह की दोहरी पहचान — एक तरफ़ गाँव के कथाकार के तौर पर और दूसरी तरफ़ 'काशी ट्रिलॉजी' के रचयिता के तौर पर — दो अलग-अलग साहित्यिक प्रोजेक्ट्स के बीच का बँटवारा नहीं है, बल्कि यह उनके बौद्धिक विकास के उस एक ही मूल विचार की सीधी कथात्मक अभिव्यक्ति है: कि भारतीय सांस्कृतिक दर्शन भारतीय जीवन के हर स्तर पर — ऊँचे और निचले, शहरी और ग्रामीण, सभी जगह — समान रूप से काम करता है।

3. भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की मुख्य श्रेणियाँ: एक कामकाजी शब्दावली: सिंह की कहानियों पर सीधे बात करने से पहले, उन दार्शनिक श्रेणियों के लिए एक कामकाजी शब्दावली तय करना ज़रूरी है जिन्हें यह अध्ययन उनके काम का मुख्य

आधार मानता है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है "धारण करना" या "बनाए रखना"। यह सही व्यवस्था और कर्तव्य के उस सिद्धांत को बताता है जिसे प्राचीन भारतीय सोच में ब्रह्मांड और समाज दोनों को बनाए रखने वाला माना जाता है; भगवद गीता का प्रसिद्ध कथन कि किसी और के धर्म का पालन करके सफल होने से बेहतर है कि अपने धर्म का पालन करते हुए असफल हो जाना — 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्' (भगवद गीता 3.35) — यह बताता है कि धर्म को एक ऐसे नैतिक नियम के रूप में नहीं देखा जाता जो सब पर एक जैसा लागू हो, बल्कि यह भूमिका, समुदाय और परिस्थितियों से जुड़ी एक विशेष ज़िम्मेदारी है।

'कर्म' का शाब्दिक अर्थ है "काम" या "क्रिया"। यह उस सिद्धांत को बताता है जिसके तहत शरीर, वाणी या मन से किया गया हर काम ऐसे परिणाम पैदा करता है जो इसी जीवन में या भविष्य के जन्मों में सामने आ सकते हैं। ये परिणाम करने वाले व्यक्ति को 'संसार' (जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र) में तब तक बांधे रखते हैं जब तक कि वे परिणाम खत्म न हो जाएं या उनसे पार न पाया जाए। 'मोक्ष' — यानी इस चक्र से मुक्ति — वह अंतिम लक्ष्य है जिसकी ओर हिंदू नैतिक और धार्मिक जीवन की पूरी व्यवस्था (प्राचीन मान्यताओं के अनुसार) केंद्रित होती है। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि हिंदू परंपरा में काशी को 'तीर्थों' — यानी "पार करने के स्थानों" — में से एक माना जाता है। माना जाता है कि जो लोग इसकी सीमा के भीतर मरते हैं, उन्हें मोक्ष मिल सकता है; 'काशी खंड' और उससे जुड़े भक्ति-भौगोलिक साहित्य में इस मान्यता का विस्तार से वर्णन किया गया है।

'माया' का अनुवाद अक्सर आम तौर पर 'भ्रम' के रूप में किया जाता है, लेकिन इसका सटीक अर्थ है वह शक्ति जो सच्चाई को छिपाती है और दुनिया को दिखाती है। इसी शक्ति के कारण एकमात्र मूल वास्तविकता (अद्वैत वेदांत के अनुसार 'ब्रह्म') आम अनुभव की अनेक और अलग-अलग दिखने वाली दुनिया के रूप में दिखाई देती है; उपनिषद का वाक्य 'तत्त्वमसि' — यानी "वह तुम हो" (छांदोग्य उपनिषद 6.8.7) — शायद अद्वैतवादी दावे का सबसे सटीक रूप है। यह दावा कहता है कि व्यक्तिगत आत्मा ('आत्मन्') असल में ब्रह्मांड के मूल आधार से अलग नहीं है। पुरुषार्थ, यानी इंसानी ज़िंदगी के चार मकसद — धर्म, अर्थ (भौतिक समृद्धि), काम (इच्छा और सुख), और मोक्ष — क्लासिकल भारतीय नैतिकता को उन चीज़ों का एक ढांचा देते हैं जिन्हें एक इंसान सही तरीके से हासिल कर सकता है। क्लासिकल भारतीय कहानी-कला का ज़्यादातर हिस्सा, जिसमें नाटक और महाकाव्य शामिल हैं, इन्हीं चार मकसदों के बीच के तनाव और आपसी तालमेल के इर्द-गिर्द अपनी कहानी बुनता है। आखिर में, तीन गुणों का सिद्धांत — सत्व (स्पष्टता, तालमेल), रजस (जुनून, गतिविधि), और तमस (सुस्ती, अंधेरा) — जिसका भगवद गीता के बाद के अध्यायों में विस्तार से वर्णन है, क्लासिकल भारतीय सोच को स्वभाव और नैतिक प्रवृत्ति को वर्गीकृत करने के लिए शब्द-भंडार देता है। यह वर्गीकरण दूसरी नैतिक परंपराओं में प्रचलित अच्छाई और बुराई की धारणाओं से अलग, लेकिन अक्सर उनके साथ-साथ काम करता है।कुल मिलाकर, ये श्रेणियां — धर्म, कर्म-संसार-मोक्ष, माया और अद्वैत, पुरुषार्थ, गुण, और तीर्थ का खास विचार — मिलकर उस दार्शनिक व्याकरण को बनाती हैं जिसके बारे में यह अध्ययन कहता है कि यह सिंह की कहानियों, किरदारों और परिवेश की सतह के नीचे काम करता है। यह व्याकरण उन्हें किसी सुनी-सुनाई अमूर्त विचारधारा के तौर पर नहीं, बल्कि उनकी बनारसी परवरिश और द्विवेदी-शैली की विद्वतापूर्ण ट्रेनिंग के जीवंत बौद्धिक माहौल से विरासत में मिला था।

4. आंचलिक उपन्यासों में 'धर्म' एक नैरेटिव स्ट्रक्चर के तौर पर

'अलग-अलग वैतरणी' और सिंह के दूसरे आंचलिक उपन्यासों में, किरदारों पर जो नैतिक दबाव होता है, वह ऊपर बताए गए क्लासिकल अर्थ में 'धार्मिक' होता है: कहानी और दूसरे किरदार, किसी व्यक्ति को अच्छाई के किसी एक यूनिवर्सल पैमाने पर नहीं परखते, बल्कि उनकी भूमिका से जुड़ी खास जिम्मेदारियों के आधार पर परखते हैं — जैसे गृहस्थ, ज़मीन के मालिक किसान, माता-पिता, या आज़ादी के बाद के खेती-बाड़ी वाले समाज में किसी खास जाति और इलाके के सदस्य के तौर पर। इन दशकों में उत्तरी भारत के ग्रामीण इलाकों में जो बड़े सामाजिक और आर्थिक बदलाव हुए — जिन्हें सिंह ने लगभग एक एथनोग्राफ़र (मानव-जाति विज्ञानी) की बारीकी से दिखाया है और इसी वजह से उन्हें कभी-कभी कमतर समझते हुए 'आंचलिक' या 'रीजनलिस्ट' लेखक का लेबल दिया गया — वे इस नज़रिए से देखने पर सिर्फ़ समाजशास्त्र का विषय नहीं रह जाते। बल्कि, वे क्लासिकल 'धार्मिक' सवाल के लिए एक लगातार चलने वाली कसौटी बन जाते हैं: जब वे भौतिक और सामाजिक हालात ही बिखर रहे हों जिन्होंने कभी किसी भूमिका को सही और तर्कसंगत बनाया था, तब कोई व्यक्ति अपनी उस भूमिका के प्रति क्या ज़िम्मेदारी निभाता है?

"स्वतंत्रता आई! ज़मींदारी टूटी! करैता के किसानों को लगा कि दिन फिरेंगे! मगर हुआ क्या? अलग अलग वैतरणी! अलग-अलग नर्क!"

— *शिवप्रसाद सिंह, अलग-अलग वैतरणी*, लोकभारती प्रकाशन, 2004.

'अलग-अलग वैतरणी' शीर्षक अपने आप में दार्शनिक रूप से गहरा अर्थ रखता है, जिसे वे पाठक आसानी से नहीं समझ पाएंगे

जो इसके पीछे के ब्रह्मांडीय संदर्भ से परिचित नहीं हैं: पौराणिक साहित्य में, वैतरणी पाताल लोक की वह नदी है जिसे आत्मा को मृत्यु के बाद पार करना होता है; यह खून, गंदगी और पीड़ा की नदी है जिसे जीवन में सही आचरण — यानी धर्म का सही पालन — करके ही सुरक्षित रूप से पार किया जा सकता है, और अक्सर इसके लिए जीवनकाल में गाय का दान (गो-दान संस्कार) जैसे पुण्य कार्य की मदद ली जाती है। अलग-अलग पात्रों या समुदायों के लिए "अलग-अलग" वैतरणियों की बात करने वाला यह शीर्षक संरचना के स्तर पर यह संकेत देता है कि सिंह के क्षेत्रीय उपन्यास इस विचार पर आधारित हैं कि हर ग्रामीण समुदाय, परिवार या व्यक्ति नैतिक हिसाब-किताब की इस नदी के अपने संस्करण को पार करता है — और यह सब वे धर्म और कर्म के अपने विशिष्ट बोझ के साथ करते हैं, न कि किसी एक समान परीक्षा का सामना करते हुए। यहाँ धर्म को अमूर्त रूप में नहीं, बल्कि अलग-अलग स्थितियों के अनुसार दायित्व के रूप में समझा गया है — ठीक वैसे ही जैसे गीता में 'स्व-धर्म' (अपने विशेष कर्तव्य) पर ज़ोर दिया गया है, न कि किसी दूसरे के 'पर-धर्म' (सामान्य कर्तव्य) पर।

यह ध्यान देने योग्य है कि धर्म के नज़रिए से की गई इस व्याख्या को बिना किसी आलोचना या केवल सकारात्मकता के नज़रिए से नहीं देखा जाना चाहिए। सिंह के क्षेत्रीय उपन्यासों की आलोचनात्मक समीक्षाओं से पता चलता है कि वे जाति और कृषि-जीवन की वास्तविक कठिनाइयों, अन्याय और संरचनात्मक असमानता का बेबाकी से चित्रण करते हैं; और उनके पात्रों की मुश्किल स्थितियों को धर्म के नज़रिए से समझने का मतलब यह नहीं है कि जिस सामाजिक व्यवस्था में वे रहते हैं, उसे न्यायपूर्ण माना जाए। इसके बजाय, धर्म का ढांचा उस नैतिक शब्दावली को समझने में मदद करता है जिसके ज़रिए सिंह के पात्र खुद अपने दायित्वों को समझते हैं, उन पर सवाल उठाते हैं और कभी-कभी उन्हें पूरा करने में विफल भी रहते हैं — यह उस कहानी की आंतरिक नैतिक संरचना है, जो कहानी द्वारा की जाने वाली बाहरी समाजशास्त्रीय आलोचना से अलग तो है, लेकिन उससे जुड़ी हुई भी है।

5. कर्म, पवित्रता और नदियों का प्रतीकात्मक भूगोल

सिंह की काल्पनिक दुनिया में नदियों का एक बहुत ही खास प्रतीकात्मक स्थान है। इस खास स्थान को केवल प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के बजाय भारतीय सांस्कृतिक दर्शन के 'कर्म और पवित्रता' के नज़रिए से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। गंगा, जिसके किनारे सिंह की काशी-केंद्रित कहानियाँ रची गई हैं, उसे हिंदू परंपरा में एक पवित्र नदी माना जाता है। माना जाता है कि इसका पानी पाप धो देता है और इसके किनारे—खासकर काशी में—मरते हुए व्यक्ति को उसके जमा हुए कर्मों के बोझ से मुक्त करने की क्षमता रखते हैं। सिंह की एक लघु कथा, जिसका अनुवादित शीर्षक "कर्मनाशा की हार" है, का नाम एक अलग और शिक्षाप्रद रूप से विपरीत नदी से लिया गया है: कर्मनाशा। यह बिहार-उत्तर प्रदेश सीमा क्षेत्र की एक वास्तविक सहायक नदी है, जिसके नाम का अर्थ ही है "कर्मों का नाश करने वाली"। क्षेत्रीय तीर्थयात्रा परंपरा और लोक मान्यताओं में इसे पार करना या इसका पानी पीना लंबे समय से अशुभ माना जाता रहा है—जो पुण्य देने वाली गंगा के बिल्कुल विपरीत प्रतीक है।

एक ऐसी नदी जो अपने नाम के अर्थ के अनुसार ही कर्मों का नाश करती है, और दूसरी ओर गंगा जो कर्मों को मिटाकर मोक्ष देती है (जिसके किनारे काशी ट्रिलॉजी की कहानी रची गई है)—इन दोनों के बीच जानबूझकर दिखाया गया यह अंतर सिंह को अपने व्यापक लेखन में 'कर्म' की अवधारणा के इर्द-गिर्द एक पूरा प्रतीकात्मक भूगोल रचने का मौका देता है। उनकी कहानियों में नदियाँ शायद ही कभी तटस्थ भौगोलिक विशेषताएँ होती हैं; बल्कि वे सक्रिय दार्शनिक तत्वों के रूप में काम करती हैं, जो उनके पात्रों पर मौजूद नैतिक बोझ को या तो बढ़ा सकती हैं या उससे मुक्त कर सकती हैं।

"जब शिवत्व तिरस्कृत होता है, व्यक्ति के हक छीने जाते हैं।
सत्य और न्याय अवहेलित होते हैं, तब जन-जन के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल जाती है।"

नदी पर आधारित यह प्रतीकात्मक भूगोल यह भी साफ़ करता है कि 'काशी ट्रिलॉजी' में घाटों — पत्थर की सीढ़ियाँ और चबूतरे जहाँ शहर नदी से मिलता है — को कहानी की खास जगहों के तौर पर इतना महत्व क्यों दिया गया है। इस अध्ययन में विकसित दार्शनिक शब्दावली के अनुसार, घाट असल में एक दहलीज या छोटे रूप में 'तीर्थ' है: अशुद्ध और शुद्ध के बीच, साधारण शारीरिक जीवन और उससे मुक्ति की संभावना के बीच एक भौतिक मिलन-स्थल। 'गली आगे मुड़ती है' और 'वैश्वानर' के पात्र जो घाटों पर इकट्ठा होते हैं, काम करते हैं, शोक मनाते हैं या बस समय बिताते हैं, वे इस नज़रिए से लगातार कर्म-मोक्ष के रिश्ते के उस दार्शनिक मोड़ पर होते हैं जिसे पूरी ट्रिलॉजी में तलाशा गया है, चाहे कोई खास दृश्य इसे साफ़ तौर पर दिखाए या न दिखाए।

6. तीर्थ और मोक्ष: काशी ट्रिलॉजी में दार्शनिक जगह के तौर पर काशी

काशी को एक ऐसे तीर्थ के तौर पर वर्गीकृत करना जो अपनी सीमाओं के भीतर मरने वालों को मोक्ष दिला सकता है, 'काशी ट्रिलॉजी' के लिए कोई मामूली पृष्ठभूमि नहीं है; यह शायद ट्रिलॉजी के पूरे ढांचे को तय करने वाली सबसे अहम दार्शनिक बात है, क्योंकि इसका मतलब है कि सेटिंग का अपना एक मोक्ष-संबंधी दावा है जो किसी पात्र के निजी गुण या कोशिश से स्वतंत्र है। बनारस की

साहित्यिक कल्पना पर राणा पी. बी. सिंह के शोध में देखा गया है कि 'नीला चाँद' की खासियत यह है कि यह लैंडस्केप (भू-दृश्य) को संस्कृति से बहुत करीब से जोड़ता है, और इस पेपर में विकसित दार्शनिक ढांचा उस अवलोकन का एक और खास रूप बताता है: ट्रिलॉजी में लैंडस्केप संस्कृति से जुड़ा हुआ है क्योंकि काशी का लैंडस्केप — उस परंपरा के भीतर जिसे सिंह ने अपनी द्विवेदी-शैली की ट्रेनिंग से अपनाया था — पहले से ही भौगोलिक रूप में एक दार्शनिक दावा है — शहर के घाट, मंदिर और श्मशान घाट वे भौतिक शब्द हैं जिनमें तीर्थ के सिद्धांत को व्यक्त किया जाता है।

इसका ट्रिलॉजी द्वारा व्यक्तिगत मृत्यु और ऐतिहासिक नुकसान को संभालने के तरीके पर एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक असर पड़ता है। जहाँ दार्शनिक रूप से तटस्थ शहर में सेट उपन्यास को किसी पात्र की मृत्यु को पूरी तरह से व्यक्तिगत या सामाजिक अर्थ-निर्माण के माध्यम से हल करने की आवश्यकता होगी, वहीं मोक्ष-तीर्थ के रूप में वर्गीकृत शहर में सेट उपन्यास व्यक्तिगत मृत्यु को एक स्वचालित, सेटिंग-प्रदत्त महत्व ले जाने की अनुमति दे सकता है जो मृतक पात्र की जीवनी पर निर्भर नहीं करता है। इससे सिंह की रचनाओं पर पहले हुए शोध में बताई गई उनकी त्रयी (तीन उपन्यासों की श्रृंखला) की एक खासियत समझी जा सकती है: उनके शहरी उपन्यासों में मणिकर्णिका और दूसरे श्मशान घाटों पर मौत को जिस तरह से शांत भाव से—यहाँ तक कि कभी-कभी उत्सव जैसे माहौल में—दिखाया गया है, वह उनके ग्रामीण या 'आंचलिक' उपन्यासों में दिखाए गए गहरे दुख और बिना सुलझे नुकसान से बिल्कुल अलग है; क्योंकि ग्रामीण उपन्यासों में ऐसी कोई 'तीर्थ' वाली मान्यता नहीं है जो किसी व्यक्ति की मौत को एक बड़े और उस जगह से जुड़े अर्थ में समाहित कर सके।

"काशी केवल एक नगर नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक स्मृति और आध्यात्मिक चेतना का जीवंत प्रतीक है।
*"(लोकभारती प्रकाशन / राजकमल संस्करण) शिवप्रसाद सिंह, **पुस्तक:** वैश्वानर*

7. माया और अद्वैत: 'नीला चाँद' में स्वयं और शहर का विलय

'नीला चाँद' की दोहरे समय वाली सेटिंग — बारहवीं सदी की कहानी जो लक्ष्मी कर्ण और अवल्ला देवी पर केंद्रित है और बीसवीं सदी पर आधारित ट्राइलॉजी का हिस्सा है — 'माया' की अद्वैतवादी श्रेणी के ज़रिए इसे समझने का मौका देती है। माया वह शक्ति है जो दुनिया को दिखाती है, जिसके कारण एक ही मूल सच्चाई को कई अलग-अलग रूपों में अनुभव किया जाता है। इस नज़रिए से देखें तो, बारहवीं और बीसवीं सदी की ऐतिहासिक काशी ट्राइलॉजी में उसी तरह काम करती हैं जैसे अद्वैत वेदांत में आम अनुभव की अनेकता वाली दुनिया (व्यावहारिक सत्य) उस एक, न बदलने वाले अस्तित्व के आधार (पारमार्थिक सत्य) के सापेक्ष काम करती है जो उसके नीचे होता है: हर ऐतिहासिक काशी अपने स्तर पर वास्तविक और महत्वपूर्ण है, और फिर भी न तो वह उस एक शहर-सच्चाई को पूरी तरह दिखाती है और न ही उससे अलग है, जिसका वे दोनों रूप हैं।यह अद्वैतवादी ढांचा दार्शनिक रूप से सटीक तरीका भी देता है यह बताने का कि इस पेपर के पिछले हिस्सों में जिसे ऐतिहासिक नुकसान और शाश्वत निरंतरता का मेल कहा गया था, उसका क्या मतलब है। उपनिषदों की शिक्षा कि व्यक्तिगत स्वयं ब्रह्मांडीय अस्तित्व के आधार से अलग नहीं है — 'तत्त्वमसि' (वह तुम हो) — का स्वाभाविक विस्तार, किसी व्यक्ति के बजाय शहर पर केंद्रित टेक्स्ट में यह मतलब निकालता है कि शहर का व्यक्तिगत ऐतिहासिक क्षण, सबसे गहरे स्तर पर, शहर की निरंतर, इतिहास-पार पहचान से अलग नहीं है; 'नीला चाँद' की बारहवीं सदी की काशी और 'गली आगे मुड़ती है' की बीसवीं सदी की काशी के बीच दार्शनिक रूप से वैसा ही संबंध है, जैसा उपनिषदों में व्यक्तिगत आत्मा और सार्वभौमिक ब्रह्म के बीच बताया गया है।

छांदोग्य उपनिषद- *"तत्त्वमसि, श्वेतकेतो।"* (6.8.7)
उपन्यास में व्यक्ति, इतिहास और नगर की एकात्म चेतना की व्याख्या के लिए यह सबसे उपयुक्त वैदांतिक आधार है।
माण्डूक्य उपनिषद- *"अयं आत्मा ब्रह्म।"*
आत्मा और परम सत्य की एकता को स्थापित करता है।

आखिर में, डॉक्टरेट की पढ़ाई के लिहाज़ से एक ज़रूरी बात पर ध्यान देना चाहिए: अद्वैत के नज़रिए से 'नीला चाँद' को पढ़ने में इस बात का ख़तरा है कि ऐतिहासिक फ़िक्शन वाली इस रचना को ज़रूरत से ज़्यादा दार्शनिक बना दिया जाए, जबकि इसकी कहानी का असली मज़ा दरबारी साज़िशों, राजनीतिक टकराव और इंसानी रिश्तों में है, न कि साफ़-साफ़ मेटाफ़िज़िकल (अध्यात्म-संबंधी) बहस में। इसलिए, यहाँ जो बात कही जा रही है, वह लेखक के इरादे या साफ़-साफ़ धार्मिक सिद्धांतों के बारे में नहीं, बल्कि रचना की बनावट के बारे में है: एक ही ट्रिलॉजी (तीन उपन्यासों की श्रृंखला) में ऐतिहासिक रूप से अलग-अलग समय की दो काशी को साथ रखने से जो असर पैदा होता है, उसे सबसे अच्छे और सटीक ढंग से अद्वैत वेदांत की शब्दावली से ही समझाया जा सकता है — यह शब्दावली 'एक' और 'अनेक' के बीच के रिश्ते को बताने के लिए बनी थी। इसका मतलब यह नहीं है कि सिंह ने उपन्यास के रूप में कोई वेदांत का ग्रंथ लिखने की कोशिश की थी, बल्कि बात यह है कि बनारस में पले-बढ़े और द्विवेदी जी से प्रभावित

हिंदी उपन्यासकार के पास अनेकता में एकता के बारे में सोचने के लिए जो वैचारिक साधन थे, वे काफ़ी हद तक अद्वैतवादी थे, और इस ट्रिलॉजी की बनावट पर उस विरासत की छाप साफ़ दिखती है।

8. पुरुषार्थ और पात्रों व कथानक की संरचना

भारतीय नैतिकता की पारंपरिक व्यवस्था — धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (चार पुरुषार्थ) — सिंह के पात्रों की प्रेरणाओं को समझने का एक उपयोगी पैमाना देती है, चाहे वे पात्र 'आंचलिक' उपन्यासों के हों या 'काशी ट्रिलॉजी' के। इसे लागू करने पर एक ऐसा पैटर्न सामने आता है जिस पर आसानी से ध्यान नहीं जाता, अगर उपन्यासों को सिर्फ़ सामाजिक यथार्थवाद के नज़रिए से पढ़ा जाए। ग्रामीण उपन्यासों के पात्र ज़्यादातर 'अर्थ' — यानी खेती-किसानी की मुश्किलों के बीच भौतिक ज़रूरतों को पूरा करने और आर्थिक रूप से जीवित रहने — और ऊपर बताए गए धर्म (भूमिका-आधारित कर्तव्य) में ही उलझे रहते हैं; 'काम' — यानी रोमांटिक और सौंदर्य-बोध वाली चाहत समेत व्यापक अर्थों में इच्छा — धर्म और अर्थ के लिए एक बाधा या दबाव के रूप में ज़्यादा दिखता है, न कि अपने आप में किसी लक्ष्य के तौर पर; और 'मोक्ष' — यानी मुक्ति — कहानी के साफ़ लक्ष्य के तौर पर लगभग नदारद है, जो गाँव की दुनिया में 'तीर्थ' जैसी जगह न होने के अनुरूप ही है।

इसके उलट, शहरी 'काशी ट्रिलॉजी' की संरचना ऐसी है कि इसमें चारों पुरुषार्थ एक साथ काम करते हैं। 'वैश्वानर' और 'गली आगे मुड़ती है' में आधुनिक शहर के आर्थिक दबावों के बीच भी ग्रामीण कहानियों की तरह 'अर्थ' और 'धर्म' की चिंता बनी रहती है, लेकिन इस ट्राइलॉजी (तीन उपन्यासों की श्रृंखला) की सेटिंग 'काम' (इच्छा, शाही और रोमांटिक रिश्ते, जो खास तौर पर 'नीला चाँद' में लक्ष्मी कर्ण और अवल्ला देवी से जुड़ी मध्ययुगीन कहानी में दिखते हैं) और 'मोक्ष' (शहर के तीर्थ स्थल होने की वजह से) को भी कहानी का जीवंत हिस्सा बनाती है, जैसा कि ग्रामीण कहानियों की सेटिंग में मुमकिन नहीं होता। इस नज़रिए से देखें तो ट्राइलॉजी का मकसद शास्त्रीय शब्दों में एक ही कहानी की दुनिया में चारों पुरुषार्थों को पेश करने की कोशिश है; इसमें तीनों उपन्यासों की ऐतिहासिक गहराई का इस्तेमाल करके यह दिखाया गया है कि कैसे एक ही शहर, अलग-अलग समय और अलग-अलग किरदारों के लिए, भारतीय शास्त्रीय नैतिकता में माने गए सभी जायज़ मानवीय लक्ष्यों का केंद्र बन सकता है।

पुरुषार्थ पर आधारित यह व्याख्या ट्राइलॉजी के पाठकों द्वारा महसूस किए गए एक संरचनात्मक असंतुलन की वजह भी बताती है: 'नीला चाँद' की मध्ययुगीन कहानी में आधुनिक दौर वाले उपन्यासों की तुलना में 'काम' और 'अर्थ' (खासकर शाही इच्छा और राजनीतिक महत्वाकांक्षा के रूप में) पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है, जबकि आधुनिक आर्थिक हालात पर आधारित उपन्यासों में 'अर्थ' और 'धर्म' को प्रमुखता दी गई है, 'काम' को परोक्ष रूप से दिखाया गया है और 'मोक्ष' को कहानी के मुख्य लक्ष्य के बजाय घाटों से जुड़ी एक पृष्ठभूमि की संभावना के तौर पर रखा गया है|

भारतीय संस्कृति और काशी

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, भारतीय संस्कृति के चार अध्याय

"भारतीय संस्कृति का मूल स्वर समन्वय है।"

काशी को विविध परम्पराओं के संगम और सांस्कृतिक निरंतरता के प्रतीक के रूप में समझने के लिए।

9. द्विवेदी की विरासत: बौद्ध, नाथ और लोक परंपराओं का मेल

सेक्शन 2 में बताई गई बौद्धिक समझ पर वापस लौटते हुए, हजारी प्रसाद द्विवेदी की विद्वता की खास बातों पर और गौर करना ज़रूरी है। इससे यह साफ़ होता है कि क्यों सिंह की काल्पनिक दुनिया भारतीय सांस्कृतिक दर्शन को एक ही, सिद्धांत के तौर पर शुद्ध हिंदू वेदांती व्यवस्था के बजाय, अलग-अलग परंपराओं के मेल से बनी एक निरंतरता के रूप में देखती है। द्विवेदी की अपनी रिसर्च में नाथ योग संप्रदाय (जैसे गोरखनाथ से जुड़ी परंपराएं), कवि-संत कबीर द्वारा इस्लामी, वैष्णव-भक्ति और नाथ-योग तत्वों का मेल, और बाद की स्थानीय हिंदू भक्ति-धारा में बौद्ध और तांत्रिक विचारों का बने रहना—इन सब पर विस्तार से बात की गई है। उनकी विद्वता का मुख्य विचार यह है कि भारतीय धार्मिक संस्कृति, अगर सही ढंग से समझी जाए, तो ऐतिहासिक रूप से अलग-अलग परंपराओं की कई परतों का मेल है, न कि कोई एक अखंड वेदांती या वैदिक सार।

काशी खुद इस तरह के मिले-जुले नज़रिए के लिए बहुत समृद्ध सामग्री देती है। यह ऐतिहासिक शहर अलग-अलग समय पर बौद्ध शिक्षा का एक बड़ा केंद्र रहा है (सारनाथ के पास, जो जैन परंपरा से भी जुड़ा है), और यहाँ नाथ-योगी और तांत्रिक शैव गतिविधियों का भी अहम केंद्र रहा है। ये सब उस पहचान के नीचे और साथ-साथ मौजूद हैं जिसके लिए यह शहर ज़्यादा मशहूर है—यानी ब्राह्मणवादी हिंदू तीर्थयात्रा का आदर्श शहर। अगर कोई उपन्यासकार द्विवेदी के तरीके और बारीकी से इस तरह के कई परतों वाले धार्मिक इतिहास को पढ़ने के लिए तैयार होता, तो वह काशी के घाटों, मंदिरों और गलियों को सिर्फ़ एक ही, सिद्धांत के तौर पर एक जैसे हिंदू दर्शन की अभिव्यक्ति के तौर पर नहीं देखता, बल्कि एक सच्ची विविध सांस्कृतिक-दार्शनिक विरासत के तौर पर देखता,

जिसमें वेदांती, बौद्ध, तांत्रिक और लोक-भक्ति के तत्व एक साथ मौजूद हैं—कभी मिल-जुलकर और कभी एक उत्पादक तनाव के साथ। यह मिली-जुली सोच, सेक्शन 7 में बताई गई शुद्ध अद्वैतवादी या वेदांती व्याख्या को एक उपयोगी तरीके से और जटिल बनाती है। अगर नीला चाँद में मध्यकालीन और आधुनिक काशी को साथ रखकर 'एक' और 'अनेक' के बीच अद्वैतवादी रिश्ते जैसा कुछ दिखाया गया है, तो उस मध्यकालीन काशी को बनाने वाली खास ऐतिहासिक सामग्री — यानी बारहवीं सदी की वह दुनिया जिसमें बौद्ध, जैन, शैव और उभरती हुई भक्ति धाराएँ सभी सक्रिय थीं — यह बताती है कि जिस बुनियादी एकता की ओर यह त्रयी इशारा करती है, वह सिद्धांतों के मामले में संकीर्ण वेदांती एकता नहीं है, बल्कि वह व्यापक और विविध निरंतरता है जिसे दर्ज करने में द्विवेदी ने अपना पूरा करियर लगाया: एक ऐसी सांस्कृतिक सोच जो एक ही, लगातार बसे हुए पवित्र भौगोलिक क्षेत्र में कई, ऐतिहासिक रूप से अलग-अलग भारतीय धार्मिक-दार्शनिक परंपराओं को एक साथ समेटने की क्षमता रखती है।

10. क्रिटिकल रिसेप्शन और हिस्टोरियोग्राफिक प्लेसमेंट

हिंदी लिटरेरी हिस्ट्री में सिंह की जगह, जिसकी चर्चा काशी ट्रिलॉजी पर पहले की स्कॉलरशिप में उनके समय के बारे में की गई थी, जब इसे खास तौर पर इंडियन कल्चरल फिलॉसफी के नज़रिए से देखा जाता है, तो और भी अलग हो जाती है। नीला चाँद के लिए उनका 1990 का साहित्य अकादमी अवॉर्ड, साथ ही नॉवेल को मिले व्यास सम्मान और शारदा सम्मान, और हिंदी के आंचलिक नॉवेल लिखने वालों में फणीश्वर नाथ रेणु के बाद उनका दूसरा स्थान, ये सब मिलकर इस बात का इशारा करते हैं कि उन्हें इतनी क्रिटिकल पहचान मिली कि यह दावा सही साबित होता है कि भारतीय चीज़ों के प्रति सिंह के फिलोसोफिकल नज़रिए को उनके समय के लोगों ने एक खास और कीमती लिटरेरी अचीवमेंट माना, यहाँ तक कि, जैसा कि पहले बताया गया था, हिंदी के एलीट क्रिटिकल सर्कल कभी-कभी उनके रीजनल फिक्शन को उनके इलाके के होने की वजह से खारिज कर देते थे। सिंह के फिक्शन पर खास क्रिटिकल मोनोग्राफ का होना, जिसमें सिंह के नैरेटिव काम में रीजनल कॉन्शसनेस (आंचलिक बोध) पर उत्तम जाधव की स्टडी भी शामिल है, यह दिखाता है कि हिंदी भाषा की स्कॉलरशिप इस खास सवाल पर काफी हद तक ध्यान देती रही है कि उनके कॉर्पस में रीजनल, फोक और क्लासिकल फिलॉसफी मटीरियल को कैसे सिंथेसाइज़ किया गया है, हालांकि इस पेपर में डेवलप की गई खास फिलॉसफी कैटेगरी — धर्म, कर्म, तीर्थ, माया, पुरुषार्थ, और द्विवेदी से मिली सिंक्रेटिक मेथड — के साथ इस स्कॉलरशिप की पूरी मैपिंग अभी भी मौजूदा स्टडी पर बेस्ड फ्यूचर कम्पेरेटिव रिसर्च का काम है।

सिंह को बीसवीं सदी के हिंदी नॉवेलिस्ट के बड़े लैंडस्केप में रखना भी सही रहेगा, जिन्होंने डेकोरेटिव इल्यूज़न के बजाय स्ट्रक्चरिंग डिवाइस के तौर पर क्लासिकल इंडियन फिलॉसफी कैटेगरी के साथ सीरियसली काम किया, एक ऐसा लैंडस्केप जिसमें नैचुरली द्विवेदी के अपने हिस्टोरिकल नॉवेल के साथ-साथ उसी इंटेलेक्चुअल जेनरेशन के दूसरे बनारस और यूनिवर्सिटी-ट्रेंड राइटर के नॉवेल भी शामिल होंगे। ऐसी तुलना वाली हिस्टोरियोग्राफिक स्टडी इस पेपर के दायरे से बाहर है, लेकिन यहाँ डेवलप किए गए फिलोसोफिकल फ्रेमवर्क को आगे बढ़ाने वाली रिसर्च के लिए एक नैचुरल अगला कदम है।

11. निष्कर्ष

इस पेपर में यह तर्क दिया गया है कि इंडियन कल्चरल फिलॉसफी ने शिवप्रसाद सिंह की फिक्शनल दुनिया को थीम या सेटिंग से कहीं ज़्यादा गहरे लेवल पर आकार दिया: इसने स्ट्रक्चरल ग्रामर दिया — धार्मिक भूमिका-दायित्व, कर्म और शुद्धिकरण वाली नदी-सिंबोलिज्म, तीर्थ सिद्धांत की सेटिंग से मिला सोटेरियोलॉजिकल क्षितिज, ऐतिहासिक-बहुलता के अंदर एकता का अद्वैत लॉजिक, जायज़ इंसानी लक्ष्यों का चार गुना पुरुषार्थ मैप, और बौद्ध, नाथ, तांत्रिक, और लोक-भक्ति के साथ-साथ वेदांतिक स्तरों को पढ़ने के लिए द्विवेदी से मिला एक मिला-जुला तरीका — जिससे उनके नॉवेल कैरेक्टर, प्लॉट, भूगोल और ऐतिहासिक समय को ऑर्गनाइज़ करते हैं। यह स्ट्रक्चरल विरासत, एक लिटरेरी केस स्टडी के लिए असामान्य बायोग्राफिकल सटीकता के साथ, सिंह के अपने इंटेलेक्चुअल फॉर्मेशन से पता चलती है: राहुल सांकृत्यायन द्वारा प्रशंसित एक मध्ययुगीन अवहट्ठ टेक्स्ट पर एक M.A. डिसर्टेशन, और उसके बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी के अंडर एक क्रिटिकल फॉर्मेशन, जिनकी स्कॉलरशिप ने पूरे समय भारतीय धार्मिक-फिलॉसॉफिकल कल्चर को एक बंद, अकेली परंपरा के बजाय एक जीवंत, लेयर्ड कंटिन्युअम के रूप में मानने पर जोर दिया।

काशी ट्रिलॉजी और आंचलिक नॉवेल, इस फिलॉसॉफिकल लेंस से एक साथ पढ़े जाने पर, दो अलग-अलग लिटरेरी प्रोजेक्ट्स के रूप में नहीं उभरते हैं - एक शहरी और मेटाफिजिकल, दूसरा ग्रामीण और सोशल-रियलिस्ट - बल्कि एक सिंगल, लगातार इन्वेस्टिगेशन के रूप में कि कैसे वैध इंसानी लक्ष्यों का वही चार गुना स्ट्रक्चर, वही कर्म और धार्मिक एथिकल ग्रामर, इस आधार पर अलग-अलग तरीके से काम करता है कि कोई सेटिंग मोक्ष तक उस खास, तीर्थ-प्रदत्त एक्सेस को वहन करती है या नहीं जो काशी की धार्मिक जियोग्राफी देती है और जिसे आम गांव, चाहे सिंह अपनी नैतिक गंभीरता को कितना भी समृद्ध रूप से प्रस्तुत करें, नहीं करता है। एक डॉक्टरेट स्टडी के लिए, सिंह को इस तरह से पढ़ने का मुख्य योगदान एक आम क्रिटिकल लालच का विरोध

करना है — एक भारतीय नॉवेलिस्ट के धर्म, कर्म, या पवित्र शहर के इस्तेमाल को एक विरासत में मिले कल्चरल रंग के रूप में देखना, जो एक ऐसे प्लॉट पर डाला गया है जिसे, सिद्धांत रूप में, किसी भी दूसरे तरीके से ऑर्गनाइज़ किया जा सकता है — और इसके बजाय इस बात पर ज़ोर देना कि ये कैटेगरी, सिंह के मामले में, प्लॉट और कैरेक्टर को इस तरह से बनाती हैं कि उन्हें फिक्शन के अपने अंदरूनी लॉजिक को खत्म किए बिना हटाया नहीं जा सकता। इस स्टडी पर आधारित भविष्य की रिसर्च के लिए अच्छा होगा कि इस पेपर में बताए गए खास हिस्सों का बारीकी से, पेज-साइटेड टेक्स्टुअल एनालिसिस किया जाए, द्विवेदी के अपने हिस्टोरिकल फिक्शन और उसी पीढ़ी के दूसरे बनारस-स्कूल नॉवेलिस्ट तक कम्पेरेटिव फ्रेम को बढ़ाया जाए, और यह पूछा जाए कि सिंह के काम में यहां पहचाना गया फिलॉसॉफिकल ग्रामर उनके बाद लिखने वाले हिंदी नॉवेलिस्ट की अगली पीढ़ी में कितना बना रहता है, बदलता है, या टूट जाता है।

संदर्भ सूची

1. भगवद्गीता (2007),*भगवद्गीता* (अनुवाद:एकनाथ ईश्वरन), नीलगिरि प्रेस।
2. छांदोग्य उपनिषद(1994),*द प्रिंसिपल उपनिषद्स*में (अनुवाद:सर्वपल्ली राधाकृष्णन),हार्परकॉलीन्स।
3. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी(1942),*कबीर*, राजकमल प्रकाशन।
4. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी (1950),*नाथ सम्प्रदाय*। नया साहित्य कुटीर।
5. डायना एल. एक (1982),*Banaras: City of Light*, अल्फ्रेड ए. नॉफ।
6. उत्तम जाधव। (2020), *शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य : आंचलिक बोध*, किताब घर।
7. शिवप्रसाद सिंह,*अलग-अलग वैतरणी*, राजकमल प्रकाशन।
8. शिवप्रसाद सिंह (1967),*गली आगे मुड़ती है*, राजकमल प्रकाशन।
9. शिवप्रसाद सिंह(1990) *नीला चाँद*, राजकमल प्रकाशन।
10. शिवप्रसाद सिंह,*कर्मनाशा की हार*,*सम्पूर्ण कहानियाँ*में, राजकमल प्रकाशन।
11. शिवप्रसाद सिंह,*वैश्वानर*, राजकमल प्रकाशन।